

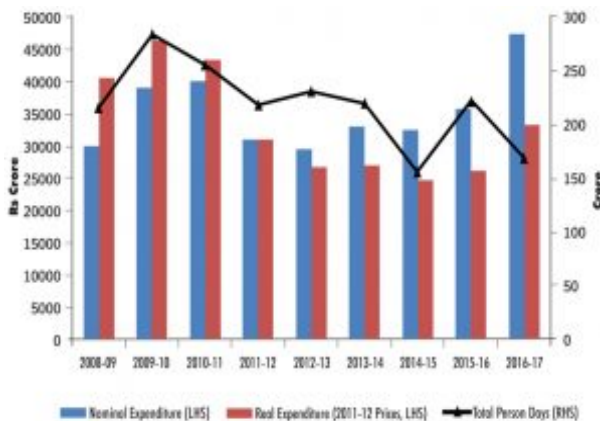


**THE TIMES OF INDIA**

**Date: 24-02-17**

## Adrift and directionless

***Can MGNREGA move from being a ‘living monument of UPA’s failure’ to a development scheme?***



This year in his budget speech, finance minister Arun Jaitley proudly announced the allocation of Rs 48,000 crore for MGNREGA – the highest since the inception of the scheme. However, this comes nearly two years after Prime Minister Narendra Modi describing the scheme – in a speech delivered to Parliament on February 27, 2015 – “a living monument of the UPA’s failure”.

The question, then, is what has changed for Modi and Jaitley? Have they realised the importance of the scheme as a safety net to fall back on during drought years, or are they going to turn it from essentially a dole into a development scheme?

Since FY09, when the scheme had a pan India roll out, expenditure for MGNREGA has grown at an average of 7% per annum in nominal terms. But in real terms measured at 2011-12 prices (by using CPI-AL as deflator), it has actually been decreasing till FY15, and then improved marginally. Still, the budgeted expenditure in FY18 is roughly about 28% lower than the revised estimate of FY10 in real terms (see graph). But how has the scheme performed in terms of creating employment opportunities in the last nine years? During periods of drought when marginal farmers and labourers alike are most vulnerable, MGNREGA is supposed to work as a social safety net by offering assurance of employment and income. In FY10, the number of households given employment and the total person days generated was the highest (see graph, RHS), owing to 2009 being a drought year. But this hasn’t been the case in recent years.

MGNREGA failed to serve as a fall back option for the poor during two consecutive droughts in 2014 and 2015. In fact the figure shows MGNREGA in FY15 generated the least number of person days and household employment since the start of the scheme. Although the following year saw an increase, it went down again in FY17. This happened despite the government’s January 2016 announcement that it would increase the number of days from 100 to 150. Thus, the scheme as a safety net did not come up to expectations in providing relief to poor workers and even marginal farmers during the drought of FY15. However, it is interesting to observe that across states, the impact of MGNREGA has been ironically better in the relatively well-off states and worse in the poorer states. In Uttar Pradesh and Bihar, where poverty levels are about 30% of the state population and which also hold a third of India’s poor – the level of employment created by MGNREGA has been disappointing. Average number of days provided in both UP and Bihar were 34 and 45 days in FY16, the second year of back to back drought. These person days were much below the promised 100 days of employment. Contrast this with richer states like Tamil Nadu where average number of days of employment in FY16 was 61. It is evident that lack of governance and high leakages in the poorer states is leaving the impoverished even more vulnerable. It is also interesting to note that the female participation in MGNREGA has gradually improved from 48% in FY09 to 57% in FY17 at all-India level. However, in Tamil Nadu and Kerala it is above 80%, but remains much lower in states like Assam, UP, Bihar and Odisha.

MGNREGA also suffers from untimely delivery and poor quality of assets created. The FM's announcement to construct another five lakh farm ponds under the scheme gives no assurance of quality and utility. The lack of a proper evaluation of asset quality by a third party leads us to the question whether MGNREGA has the potential for being an investment oriented model. With so much spent on the scheme, the returns from it in areas like irrigation have not been satisfactory. Moreover, work completion rate is also a concern. Of the target 12.4 lakh farm ponds in FY17, so far only 4.5 lakh (or 37%) have been constructed. The promise to build more farm ponds in this budget is simply pushing ambition higher than is achievable.

Nevertheless, it isn't as if the government is lacking the drive to improve the scheme. The June 2016 agreement between the ministry of rural development and Isro to geo-tag all assets constructed under MGNREGA is the right step ahead. Use of space technology to monitor and identify completed and under construction assets will not just improve outcome realisation but also transparency and accountability. MGNREGA's geo-tag platform 'Bhuvan' is a user interactive visual interface that provides information on the assets already constructed. However it is still at an infant stage and the FM's claim that it has established transparency is a bit premature. Moreover it still remains unclear what direction MGNREGA is headed towards. Its near decade long experience does not bring much solace. Real expenditure has decreased; the scheme's performance during droughts has been mixed; and assets constructed are mostly inferior. If the government is to avoid the embarrassment of MGNREGA becoming a living monument of NDA's failure, it must do more than just hiking up allocations.

**Ashok Gulati is Infosys Chair Professor for Agriculture and Sameedh Sharma is Research Assistant at ICRIER**

## बिज़नेस स्टैंडर्ड

Date: 24-02-17

### आधार का दुरुपयोग



बीते कुछ सप्ताह के दौरान कई ऐसी घटनाएं सामने आई हैं जिनमें आधार आंकड़ों के व्यापक पैमाने पर लीक होने की आशंका उत्पन्न हुई है। सबसे पहले तकनीकी क्षेत्र के एक स्टार्ट अप ने (इसका नाम है आधार सक्षम ट्रस्ट ब्यूरो) यह दिखाया कि वह किसी भीड़ भरी सड़क पर लगे क्लोज्ड सर्किट टेलीविजन की फुटेज से चेहरों को अलग से पहचान सकता है। इन तस्वीरों पर आधार के आंकड़े चस्प्रा थे जबकि कुछ खास हिस्सों को अधूरा छोड़ दिया गया था। यह फर्म उन तमाम फर्म में से एक है जो पहचान के प्रमाणन, पैन के प्रमाणन, पुलिस रिकॉर्ड की जांच और रोजगार संबंधी इतिहास की जानकारी जुटाने का दावा करती हैं। यह काम 12 अंकों के आधार नंबर से उसकी जानकारी को जोड़कर किया जाता है। एक अन्य वेबसाइट ने करीब 500,000 से अधिक अल्पवयस्कों के आधार

आंकड़े एकत्रित कर प्रकाशित किए ताकि डाटा तैयार किया जा सके। भारतीय विशिष्ट पहचान प्राधिकरण (यूआईडीएआई) ने इस वेबसाइट को बंद कर दिया है। इस दौरान आधार डाटा बेचने वाले दूरसंचार क्षेत्र के कई कर्मचारियों को गिरफ्तार भी किया गया। यह देखा जाना है कि यह आंकड़ा कैसे जुटाया गया था और क्या उनकी अन्य कॉपियां कहीं और तो प्रयोग में नहीं लाई जा रही हैं, या उन्हें दोबारा तैयार किया जा सकता है? इन सब बातों से यही संकेत मिलता है कि समांतर डाटाबेस तैयार करना मुश्किल काम नहीं है। इस तरह संवेदनशील जानकारी चुराई जा सकती है। निश्चित तौर पर इनके अस्तित्व को नकारा भी नहीं जा सकता।

यह दलील भी नहीं दी जा सकती है कि आधार के दुरुपयोग की आशंका वाली ऐसी घटनाएं आगे और नहीं बढ़ेंगी। बायोमेट्रिक पहचान की व्यवस्था का इस्तेमाल ई-केवाईसी के लिए जमकर किया जा रहा है। ऐसे आंकड़ों को एकत्रित करना मुश्किल काम नहीं है और न ही इस प्रक्रिया को रोका जा सकता है। इसे बाद में अवैध कामों के लिए भी इस्तेमाल किया जा सकता है। निश्चित तौर पर संसद सदस्य और तकनीकी क्षेत्र के कारोबारी राजीव चंद्रशेखर ने भी कहा था सैद्धांतिक तौर पर ऐसा कोई नियम कायदा नहीं है जो ऐसे आंकड़ों को एकत्रित किए जाने को अवैध करार दे। फिलहाल कोई भी बतौर एजेंट नामांकन कराके ई-केवाईसी के सत्यापन का काम कर सकता है। आधार ई-केवाईसी सेवा के लिए जरूरी एप्लीकेशन प्रोग्रामिंग इंटरफेस सार्वजनिक रूप से उपलब्ध है।

एजेंट का नामांकन आसान है। इसकी प्रक्रिया संक्षिप्त है और इसके लिए सबसे जरूरी उपकरण है एक सस्ता बायोमेट्रिक फिंगरप्रिंट स्कैनर जो स्मार्ट फोन से जुड़ा हो। केवाईसी का इस्तेमाल करने वाली एजेंसियां और सेवा प्रदान करने वाली एजेंसी किसी व्यक्ति की सहमति लेने के बाद ही आधार आंकड़े तक पहुंचती हैं। इस दौरान उस व्यक्ति को वन टाइम पासवर्ड का इस्तेमाल करना होता है जो पंजीकृत मोबाइल पर भेजा जाता है। ई-केवाईसी और प्रमाणन करने वाली एजेंसी आंकड़ों को एकत्रित कर सकती है। सकारात्मक उद्देश्य से हैकिंग करने वालों ने भी दिखाया है कि कैसे पासपोर्ट पर लगी उच्च गुणवत्ता वाली तस्वीर से आंखों की स्कैनिंग की जा सकती है। मोबाइल सेवा प्रदाता और बैंकों ने भी निजी एजेंसियों की मदद से लाखों लोगों की ई-केवाईसी की है। ऐसे में संभव है कि आधार का समांतर डाटा तैयार हो चुका हो। बुरी बात यह है कि इस संबंध में निजता या डाटा की सुरक्षा का कोई कानून तक नहीं है। ये सुरक्षा भंग बताते हैं कि भविष्य में किसी दिक्कत से बचने के लिए न्यायपालिका अथवा विधायिका को निजता संबंधी ठोस कानून लाना होगा। इस काम को जितनी तेज गति से अंजाम दिया जा सके, उतना ही बेहतर होगा।

**Date: 24-02-17**

## बुनियादी क्षेत्र में निजी निवेश पर जरूरी है नीतिगत परिवेश

**अब वक्त आ गया है कि बुनियादी ढांचा विकास में निजी क्षेत्र के निवेश को बढ़ावा देने के लिए नीतिगत माहौल तैयार किया जाए। कैसे किया जा सकता है यह काम, बता रहे हैं विनायक चटर्जी**

संसद का शीतकालीन सत्र नीतियों के लिहाज से काफी अहम है। आर्थिक समीक्षा और आम बजट इसी सत्र में पेश किया जाता है और अर्थव्यवस्था को लेकर तमाम चर्चाएं भी इस दौरान होती हैं। इन सब में बुनियादी ढांचा क्षेत्र के लिए एक ही निष्कर्ष निकलता है: बुनियादी ढांचा क्षेत्र में निजी निवेश को बढ़ावा देने के लिए जमीनी हालात को दुरुस्त करना। स्पष्ट है कि सार्वजनिक व्यय की मदद से बुनियादी विकास को बढ़ावा देना वर्ष 2014 की गर्मियों तक एकदम उचित माना जाता रहा। यही वह दौर था जब मौजूदा सरकार सत्ता में आई। दरअसल उस वक्त निजी क्षेत्र का उत्साह कमजोर पड़ रहा था और बैंकिंग क्षेत्र की हालत भी हमेशा की तरह पतली थी। ऐसे में राष्ट्रीय जनतांत्रिक गठबंधन (राजग) सरकार के पास इसके सिवा विकल्प ही क्या था? यही वजह थी कि नीतिगत आधार पर इस क्षेत्र में अच्छा खासा आवंटन किया गया। परंतु राजकोषीय घाटे से जुड़ी बाधा के कारण अब यह स्थिर है। इसके अलावा क्रियान्वयन क्षमताओं का सीमित होना भी इसके लिए जिम्मेदार है। सरकारी उद्यमों की क्षमता भी घट रही है। रेलवे का परिचालन अनुपात इस बारे में हमें बेहतर जानकारी देता है।

वित्त मंत्री ने बुनियादी ढांचा विकास के लिए कुल बजटीय आवंटन का 18.5 फीसदी यानी 21. 47 लाख करोड़ रुपये में से 3.96 लाख करोड़ रुपया आवंटित कर पहले ही बहुत कुछ कर दिया है। परंतु क्या इस नीति को जारी रखने से कुछ फायदा होने वाला है? 12वीं पंचवर्षीय योजना

(अप्रैल 2012 से मार्च 2017 के बीच) के दौरान करीब 12 लाख करोड़ रुपये मूल्य की बुनियादी ढांचा परियोजनाओं की जरूरत जताई गई थी। ऐसे में यह मानना उचित ही होगा कि अगर 13वीं पंचवर्षीय योजना जैसा कुछ होता तो इसमें सालाना जरूरत 15 लाख करोड़ रुपये के इर्दगिर्द होती। वर्ष 2017-18 के आम बजट में इस क्षेत्र में 3.96 लाख करोड़ रुपये के निवेश की बात कही गई है। मान लेते हैं कि राज्यों, मंत्रियों, सरकारी कंपनियों और विभागों के बजटोत्तर स्रोतों से इसे 100 फीसदी पूरा किया जा सकता है। इसके बाद अगर सरकारी फंडिंग क्षमता में करीब आठ लाख करोड़ रुपये का इजाफा कर दिया जाए तो भी यह जरूरत का आधा ही होगा। बकाया सात लाख करोड़ रुपये सालाना की राशि की भरपाई तो निजी पूंजी से ही करनी होगी। दुर्भाग्यवश मौजूदा माहौल में इतनी बड़ी निजी पूंजी जुटा पाना मुश्किल है। आर्थिक समीक्षा कहती है कि राजनीतिक माहौल कुछ ऐसा है जहां निजी क्षेत्र को लेकर एक हद तक दुविधा का माहौल है। यह अपने आप में बड़ी चुनौती है। मेरे पास नौ ऐसे सुझाव हैं जिनकी मदद से एक बार फिर निजी क्षेत्र में जोश पैदा किया जा सकता है।

**दोहरी बैलेंस शीट की समस्या का हल:** आर्थिक समीक्षा में दोहरी बैलेंस शीट की समस्या को उजागर किया गया है। बैंकों के फंसे हुए कर्ज के बढ़ते स्तर और कर्ज के बोझ में दबे निजी क्षेत्र की बैलेंस शीट इसका उदाहरण हैं। इसका हल पब्लिक सेक्टर असेट रिहैबिलिटेशन एजेंसी (पारा) के रूप में सुझाया गया है ताकि हालात में सुधार हो सके। इसमें कहा गया है कि इस मुद्दे पर शीघ्र उच्चस्तरीय राजनीतिक हस्तक्षेप की जरूरत है। सार्वजनिक संपत्ति का पुनर्चक्रण: दीर्घावधि वाले संस्थागत विदेशी निवेशकों में भारत के बुनियादी ढांचा क्षेत्र में निवेश की भूख है। लेकिन वे नई परियोजनाओं के बजाय उन परियोजनाओं में काम कर रहे हैं जो पुराने औद्योगिक ठिकानों पर विकसित की जा रही हैं। सरकार परिचालन इकाइयों की सबसे बड़ी मालिक है। ऐसे में सरकार और सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों को कर तथा अन्य माध्यमों से प्रोत्साहित किया जा सकता है। ताकि वे अपने कोष का पुनर्चक्रण कर उसे नई परियोजनाओं में लगा सकें।

**भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम में संशोधन:** कई बार अच्छे नौकरशाह भी उचित वाणिज्यिक निर्णय नहीं ले पाते। उनको भय होता है कि जांच एजेंसियां उनके निर्णयों पर सवाल खड़े करेंगी और इसका असर उनके करियर तथा सेवानिवृत्ति पर पड़ेगा। ऐसे में भ्रष्टाचार निरोधक अधिनियम, 1988 में संशोधन आवश्यक है। **विवाद निस्तारण:** सार्वजनिक अनुबंध (विवाद निस्तारण) विधेयक, 2015 के मुताबिक एक अधिकार प्राप्त पंचाट की परिकल्पना की गई जिसे सरकारी अनुबंधों से संबंधित विवाद निपटाने थे। एक विशेषज्ञ समिति का गठन भी किया गया जिसका काम था विशिष्ट राहत अधिनियम 1963 में संशोधनों की समीक्षा करना। इसने 20 जून 2016 को अपनी रिपोर्ट दे दी। वित्त मंत्री ने अपने बजट भाषण में इसका जिक्र किया।

**मध्यस्थता संबंधी निर्णयों में फंसी राशि को जारी करना:** अगस्त 2016 में एक साहसी कदम उठाते हुए यह निर्णय किया गया कि निजी क्षेत्र के मध्यस्थता संबंधी मामलों में फंसी राशि का 75 फीसदी हिस्सा उनके हक में जारी किया जाएगा। इस कदम का क्रियान्वयन बहुत प्रसन्न होने की वजह नहीं देता। नौकरशाही व्यवस्था ने इस प्रक्रिया को ही बाधित किया। इस बैंक गारंटी की शर्त भी शामिल है। ऐसे में अगर सरकार राशि को 100 प्रतिशत बिना शर्त जारी करने की बात सोचती तो अच्छा होता क्योंकि वैसे भी मध्यस्थता निर्णय के मामले में राज्य अन्यथा तो परास्त ही हो चुका है। **3 पी इंडिया:** यह राजग सरकार का ही विचार है कि निजी-सरकारी उद्यमों को मदद देने के लिए एक विश्वस्तरीय संस्थान गठित हो। इसकी घोषणा जुलाई 2014 के बजट में की गई थी और इसमें 500 करोड़ रुपये का कोष बनाया गया। इसे निजी सार्वजनिक उद्यम क्षेत्र को गति देने वाली एक अहम पहल माना गया। राष्ट्रीय निवेश एवं बुनियादी ढांचा कोष (एनआईआईएफ): एनआईआईएफ निश्चित रूप से बड़ी निजी फंडिंग को सुसंगत बनाने की नवाचारी पहल है। अब जबकि इसका सीईओ पदस्थ कर दिया गया है तो उम्मीद है कि आगामी वर्ष में यह निजी पूंजी की आवक को बुनियादी ढांचा क्षेत्र से कारगर ढंग से जोड़ेगा।

**स्मार्ट सिटी और म्युनिसिपल बॉन्ड:** इस क्षेत्र में आपूर्ति के लिए निजी पूंजी के संचारण को अहम माना गया है। इसके लिए म्युनिसिपल बॉन्ड बाजार में कई उपाय अपनाने होंगे। प्रधानमंत्री ने हाल में अपने एक भाषण में कहा था कि भारतीय पूंजी बाजार के कारोबारियों ने इस क्षेत्र को

समुचित तवज्जो नहीं दी है। स्वतंत्र नियमन: नीति आयोग से कहा गया था कि वह नियामकीय सुधार विधेयक को अंतिम रूप दे। इसकी घोषणा वित्त मंत्री के 2015 के बजट में की गई थी। स्वतंत्र नियमन पीपीपी को गति देने के लिए अहम शर्त है। नियामकीय अनिश्चितता और अनुमान का न लग पाना एक बड़ा जोखिम बना हुआ है। इन उपायों के साथ देश में बुनियादी ढांचा क्षेत्र को एक बार फिर गति दी जा सकती है। देश के बुनियादी ढांचा क्षेत्र में निजी निवेश आकर्षित करने के लिए ये कुछ अहम उपाय हैं।



## दैनिक भास्कर

Date: 24-02-17

### निकायों का चुनावी मॉडल और सुशासन की चुनौती

चालीस हजार करोड़ रुपए के सालाना बजट वाले बृहन्मुंबई म्युनिसिपल कॉर्पोरेशन (बीएमसी) में शिवसेना के सबसे बड़े दल के रूप में उभरने और उसके ठीक पीछे भाजपा के आने से त्रिशंकु स्थिति बन गई है। दो दशकों के सफल गठबंधन के बाद ये दोनों दल खासतौर पर शिवसेना अपना दामन छुड़ाकर अकेले चलने के लिए बेचैन हैं लेकिन, मुंबई के नतीजों ने उसके सामने अलग ही स्थिति पेश कर दी है। इससे महाराष्ट्र की राजनीति में दिलचस्प मोड़ आ गया है। इस बार शिवसेना ने स्थानीय निकायों के चुनाव अकेले ही लड़ने का फैसला किया और प्रदेश मंत्रिमंडल से अपने मंत्रियों को वापस लेने की धमकी देकर भाजपा पर दबाव बनाए रखा। हालांकि, मुंबई व ठाणे में चाहे शिवसेना आगे रही हो, शेष महाराष्ट्र में भाजपा का दबदबा कायम है। किसी समय जनता की उम्मीदों के केंद्र बने राज ठाकरे की महाराष्ट्र नवनिर्माण सेना (एमएनएस) व कांग्रेस हाशिये पर ही बने रहे। शिवसेना के बढ़ते आत्मविश्वास का एक कारण यह भी है।

छह राज्यों से ज्यादा वार्षिक बजट वाली बीएमसी में शिवसेना के वर्चस्व के पीछे रोजगार की तलाश में अन्य राज्यों से आने वाले लोगों के कारण स्थानीय मध्यवर्ग में पैदा असुरक्षा एक बड़ा कारण रहा है। एमएनएस को पूर्व में मिले जबरदस्त समर्थन के पीछे भी यही वजह थी। बीएमसी में किसी को बहुमत न होने के कारण बनने वाले राजनीतिक समीकरणों के कारण संभव है सुशासन के मुद्दे को जरूरी तवज्जो न मिले। चुनाव में सुशासन की बजाय अन्य मुद्दों के हावी रहने से मुंबई में विकास को कोई दिशा नहीं मिल पाती और न उसका आधारभूत ढांचा देश की आर्थिक व औद्योगिक राजधानी के अनुरूप कहा जा सकता है। मुंबई जैसे महानगर में बेहतर व्यवस्था की चुनौती हो तो टेक्नोलॉजी से ही उसका समाधान संभव है। यह सामान्य शिक्षा व आपराधिक रिकॉर्ड वाले जनप्रतिनिधियों के भरोसे नहीं छोड़ा जा सकता है। यह मुंबई की तरह देश के सभी महानगरों व बड़े शहरों के बारे में कहा जा सकता है। देश के कुछ राज्यों में सीधे मेयर के चुनाव के जरिये सुशासन को दिशा देने की कोशिश हो रही है। इसके साथ मेयर को टेक्नोलॉजी व अन्य विषयों के विशेषज्ञों को अपनी टीम में लेने की स्वतंत्रता देनी होगी, तभी शहरों को आधुनिक रूप देना संभव होगा वरना वे वर्तमान की तरह कचरे के ढेर बने रहेंगे।

**Date: 23-02-17**

## Learn the lesson

***HRD ministry's return to PISA is welcome. Now, use the comparative data generated to reform school education.***



The Ministry of Human Resource Development must be congratulated for steering India back to the Programme for International Student Assessment (PISA), which it had declined to participate in after a disastrous performance in 2009. PISA is a global evaluation of 15-year-olds conducted by the Organisation for Economic Cooperation and Development to gauge mathematical, scientific and reading skills of school students. Of the 74 nations participating, India was close to the bottom of the barrel. The UPA government had quit the field in high dudgeon, complaining about questions being set “out of context” in relation to the Indian socio-cultural milieu. Indeed, an Indian student may find it more comfortable to do

sums using mangoes rather than avocados for units. But the argument can be taken only thus far, for the context of math and science is the universe and its contents. Besides, a test involving European motifs which Indian students could not engage with should have been just as inscrutable to Mandarin readers. The phenomenal success of Shanghai's students suggests that the problem lies in India.

Anyway, PISA is not a contest. It is a research exercise generating data which can be compared across borders. Finishing last should not be read as losing face, but rather as an opportunity to improve teaching methods and school systems by intelligent comparison. If Singapore's systems work better, what prevents Indian school boards from emulating them? India lost out by boycotting PISA in 2012 and 2015, when Asian countries like China, South Korea and Singapore surged ahead. India need not have missed the bus, but the HRD ministry tried to change the benchmark to fit the country, rather than trying to change the country's teaching system to fit the benchmark. While PISA is not a contest, it does have one competitive aspect: It is a reliable indicator of the future intellectual capital of participating countries. At one remove, it is a function of projected GDP, a reflection of the future wealth of nations. A country hoping to win the global GDP race should regard PISA as a target. And it should try to correct the structural imbalance that this test for schoolchildren draws attention to: India swears by universities and IITs, but it is happy to let primary and secondary schools, which form the bedrock of the education system, plod along with teaching methods that are decades old. The NDA government has done well to seek to return to PISA's global testing system. But the crucial reform still lies ahead: PISA data must be used to improve the school system.

---

**Date: 23-02-17**

## Court self-corrects

### ***SC decision on surveys critical of judiciary is a step towards bringing contempt provision in line with spirit of democracy.***

In 2006, a report published by the Indian chapter of the international non-profit Transparency International and the Delhi-based Centre for Media Studies (CMS) drew the displeasure of a judicial magistrate in Jammu and Kashmir. The report, based on a survey of litigants across the state, was about the corruption in the J&K subordinate judiciary. The head of Transparency International and the CEO of CMS were issued notices under the provisions of the Contempt of Court Act, 1971. Eleven years later, the Supreme Court has quashed the notices on the ground that the subordinate courts do not have the power to issue warrants for contempt of court. But this technicality aside, the remarks of the three-judge bench led by Chief Justice J.S. Khehar, are significant. The court noted that a report based on public views regarding corruption may not invite contempt of court and such surveys, instead, give opportunities to address problems in the judicial system. For an agency that has often been accused of a thin skin in the face of criticism, the apex court's verdict shows a welcome inclination to self-correct.

The contempt of court provision most often serves to keep the judiciary outside the ambit of public opinion. The judiciary's view that such insularity is necessary to ensure its credibility as an impartial arbiter is understandable. But in times when the courts are playing an active role in shaping public policy — and also because the public has a general interest in the administration of justice — there are bound to be demands for making judges more accountable. These demands have acquired weight with charges of corruption against individual judges in the last five years or so. In 2013, in another poll by Transparency International, 45 per cent of those surveyed described the judiciary as corrupt. That year, Justice P. Sathasivam, before taking over as the Supreme Court Chief Justice, regretted that “the judiciary is not untouched by corruption”. On Tuesday, the three-judge bench remarked that surveys of the judiciary were also ways to “understand society”. “Instead of taking offence at such surveys, the judiciary should look at them closely and find ways to remedy the problems,” the bench noted. The Contempt of Court Act is a colonial relic that does the judiciary's reputation more harm than good. Its arbitrary use has a chilling effect on free speech, especially at a time when the space for dissent is seen to be shrinking. Much more remains to be done to bring the contempt of court provision in line with the demands of a modern democracy. Tuesday's verdict could be a beginning.



**Date: 23-02-17**

## Ageing with dignity

While India's celebrated demographic dividend has for decades underpinned its rapid economic progress, a countervailing force may offset some of the gains from having a relatively young population: rapid ageing at the top end of the scale. This is a cause of deep concern for policymakers as India already has the world's second largest population of the elderly, defined as those above 60 years of age. As this 104-million-strong cohort continues to expand at an accelerating pace, it will generate enormous socio-economic pressures as the demand for healthcare services and tailored accommodation spikes to historically unprecedented levels. It is

projected that approximately 20% of Indians will be elderly by 2050, marking a dramatic jump from the current 8%. However, thus far, efforts to develop a regime of health and social care that is attuned to the shifting needs of the population have been insufficient. While more mature economies have created multiple models for elder care, such as universal or widely accessible health insurance, networks of nursing homes, and palliative care specialisations, it is hard to find such systemic developments in India. Experts also caution that as the proportional size of the elderly population expands, there is likely to be a shift in the disease patterns from communicable to non-communicable, which itself calls for re-gearing the health-care system toward “preventive, promotive, curative and rehabilitative aspects of health”.

Advocacy and information campaigns may be necessary to redirect social attitudes toward ageing, which often do not help the elderly enjoy a life of stability and dignity. As highlighted in ‘Uncertain Twilight’, a four-part series in *The Hindu* on the welfare of senior citizens, the ground realities faced by the elderly include abandonment by their families, destitution and homelessness, inability to access quality health care, low levels of institutional support, and the loneliness and depression associated with separation from their families. On the one hand, the traditional arrangements for the elderly in an Indian family revolve around care provided by their children. According to the National Sample Survey Organisation’s 2004 survey, nearly 3% of persons aged above 60 lived alone. The number of elderly living with their spouses was only 9.3%, and those living with their children accounted for 35.6%. However, as many among the younger generation within the workforce are left with less time, energy and willingness to care for their parents, or simply emigrate abroad and are unable to do so, senior citizens are increasingly having to turn to other arrangements. In the private sector, an estimated demand for 300,000 senior housing units, valued at over \$1 billion, has led to a variety of retirement communities emerging across the country, in addition to innovations in healthcare delivery for this group. Yet the poor among the elderly still very much depend on the government to think creatively and come up with the resources and institutions to support their needs.

Corrections & Clarifications: A sentence in the Editorial previously, read: “It is projected that approximately 20% of Indians will be elderly by 2050, marking a dramatic jump from the current 6%. The current percentage of elderly population is 8.”

---